चर्चा

शास्त्री जी, बच्चा रो रहा है !

❑ इंदुशेखर तत्पुरुष

बच्चे और खिलौनों के मार्मिक रिश्ते पर यह विश्लेषणपरक टिप्पणी एक बड़ा परिप्रेक्ष्य निर्मित करती है। साथ ही हमारे घर-परिवारों से परंपरागत खिलौनों की अनुपस्थिति की घटना को भी सूचित करती है । और कवि केदार नाथ सिंह की प्रसिद्ध कविता 'बाघ' के उस बच्चे को वापस ध्यान के केन्द्र में ले आती है 'जो तभी कहीं रोता छूट गया था' ।

बच्चे कई बार बड़ी उलझन में डाल देते हैं । उलझन भी ऐसी कि जितना सुलझाओ उलझती ही जाती है । वे तो तालाब में कंकड़ उछाल कर मस्त हो जाते हैं और आप लगे रहो लहरें गिनने; उनकी बला से । उस दिन हमारी लाडली बेटी ने भी ऐसा कंकड़ उछाला की अभी तक लहरें समेट रहा हूं । और लहरे हैं कि अंट ही नहीं पा रहीं । शांत सी होती हैं कि इधर उधर के झोंके कुछ ऐसे उठते हैं, विचार प्रवाह की शक्ल में कि लहरें फिर मचल उठती हैं।

''पापा खिलौना किसे कहते हैं'' ? ''बेटा, जिसे खेल कर मन बहलाया जाए, - मैंने टालने के मूड में उत्तर दिया । ''तो ... फिर तो आपकी ये शतरंज भी खिलौना हुई ?'' उसने तपाक से पूछ डाला। मैं भी थोड़ा सजग हुआ । शतरंज मेरे और मेरी पत्नी के बीच में अक्सर दीवार का काम करती है । उसकी अनुपस्थिति में ही मैं गोटियों से जूझता हूं । उसके घर में होते कभी बिसात जमा भी लूं तो वह तब तक इस कमरे में नहीं आती जब तक मैं गोटियां समेट कर डिब्बों में बन्द नहीं कर देता । वह बखूबी जानती है कि उस वक्त मैं एक ऐसी दीवार की ओट में बैठा हुआ होता हूं जहां शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध की सारी तरंगें टकराकर लौट जाती हैं । इस दीवार का भी मजेदार किस्सा है । किसी जमाने में यह खूबसूरत बगीचे जैसी हुआ करती थी। जैसा कि फिल्मों में हीरो-हीरोइनों के मिलने के लिए दिखाया जाता है। मैं और मोहिनी, कोहनी टिकाए, हथेली पर ठुड्डी जमाए, घंटों एक दूसरे की आंखों में निहारते रहते थे। अंगुलियों में अटके हाथी, ऊंट, घोड़े जब तक अगले घर में टिकते, मन के बेलगाम घोड़े हजारों हजार मील का सफर तय कर लिया करते थे।

वे कॉलेज के दिन थे और यह शतरंज ही थी जो मुझे और मोहिनी को सारी दुनियां की नजरों से बच-बचाकर मिलाया करती थी । मन की मालकिन के घर की मालकिन बनने तक हुए बहुत से परिवर्तनों में यह भी हुआ कि हमारा मिलन बिंदु अब एक अलगाव बिंदु बन गया । होता भी क्यों नहीं ? जब मिलन स्थायी हो गया तो माध्यम का अडंगा क्यों बर्दाश्त करें? जिस नाव में बैठकर नदी पार कर ली, उस नाव को पीठ से बांधे-बांधे गांव भर में डोलना वज्र मूर्खता नहीं तो और क्या ?

शायद ऐसा ही सोचती होगी मोहनी, मगर मैं नहीं । शतरंज उसके लिए नाव की तरह थी, मेरे लिए तैराकी की तरह - तितीषी से रची बसी थी । एक बार तैरना सीख कर कोई भूलता थोड़े ही है ? मैंने देखा कि किस तरह एक पुल आहिस्ता आहिस्ता दीवार में तब्दील हो गया।

खैर, जैसे तैसे मैंने बात दुरूस्त की, ''मेरा मतलब जिनसे छोटे बच्चे खेल कर मन बहलाते हैं, उसे खिलौना कहते हैं ।'' परन्तु थोड़ी देर बाद मैं अपनी ही बात पर चौंक गया । हमारे छोटे सपूत रसोई की तरफ से आ रहे थे । उनके हाथ में आटे का लोया था और वे उसका सांप बनाने में जुटे थे । लोये को बंट बंट कर खूब लंबा करके वह उसके मुख को फणाकार करवाने के लिए अपनी दीदी या मुझसे सहयोग लिया करता है । यह उसका शगल है कि जब उसकी मां रोटी बना रही होती है तो वह हठपूर्वक थोड़ा सा गीला आटा लेकर उससे खेलता है । वही हुआ जिसकी आशंका

थी ।'' पापा तो क्या ये आटा भी खिलौना है ?'' ''हां''। ''मैंने कहा कभी कभी ये चीजें भी खिलौना बन जाया करती हैं ।'' ''जैसे आपकी पीठ और कंधे'' - कह कर वह खिलखिला उठी। उसकी इस बात पर मैं भी हंस पड़ा । मैं इन बच्चों के लिए गधा घोड़ा और न जाने क्या क्या बनता रहा हूं। जैसे तैसे बात को निपटाया जरूर, मगर बात अन्दर ही अन्दर घुमड़ती रही। और खिलौने के संसार के बहुत से दृश्य मन में ताकझांक करने लगे । सचमुच, क्या विचित्र संसार है खिलौनों का बच्चों के सच्चे सखा इनसे बढ़कर और कोई क्या होते होंगे ? बच्चे भी इनके बिना अपने आप को कितना आधा-अधूरा महसूस करते हैं ! सोचने की बात है कि ये किस तरह बच्चों की 'साइकोलोजीकल नीड' बन जाते हैं?

बच्चे, ज्योंही थोड़ी समझ विकसित होती है तो एक बात का अनुभव तो करते ही होंगे । क्या ये सारी दुनियां बड़ों के लिए ही बनाई गई है ? कहां जाना, क्या खाना, क्या करना, क्या नहीं करना - सारा विधि निषेध हमारे नियंत्रण में क्यों नहीं ? उन्हें लगता है कि उनके अतिरिक्त बाकी सारे लोग अपनी अपनी इच्छाओं के मालिक हैं और हम इनकी इच्छापूर्ति के उपकरण मात्र । मुझे लगता है बच्चे किसी न किसी रूप में ऐसा सोचते अवश्य होंगे । वस्तुत: यह उनके अस्तित्व को चुनौती देती हुई समस्या है । वे अपने चारों ओर के मनुष्यों को बड़े बड़े अधिकारों से सम्पन्न पाते हैं । और उस बेचारे के पास कोई अधिकार नहीं रोने के अलावा । और रोने का भी खाक अधिकार है ? जरा रोये नहीं कि इन बड़ों की दुनियां में जैसे भूचाल आ जाता है । जैसे बहुत बड़ा अपमान हो रहा हो इनका। कोई आंखे दिखायेगा, कोई डांट लगाएगा तो कोई डरायेगा धमकायेगा। एक बच्चे के रोने में जितना शोर शराबा मचता है उससे कहीं ज्यादा बबंडर तो ये बड़े उसे चुप करवाने की मशक्कत में खड़ा कर देते हैं। कहेंगे, ''खामोश रहो ... चूं भी निकली तो गाल सुर्ख कर दूंगा..।'' और चीखेंगे इतना कि थोड़ा और जोर लगा दिया होता तो गले की नसें चटककर बाहर आ लटकती ।

दरअसल जिस खिलौने में जब तक कुछ न कुछ तोड़े मरोड़े जाने की गुंजाइश बची रहती है, तभी तक वह बच्चों का मन बहला सकता है । यह बच्चों की मनोरचना से जुड़ी हुई बात ही है । खिलौने का बच्चे की पर्याप्त जद्दोजहद के बाद भी अपरिवर्तित रहना, जस का तस बने रहना उसकी सत्ता को चुनौती देता है । वह बच्चों के साम्राज्य के लिए 'अनफिट' प्रतीत होता है । क्योंकि कोई भी ऐसी सत्ता जिसके कि हम स्वामी हैं और उसमें मनचाहा परिवर्तन भी नहीं कर सकते, कुछ तोड़–मरोड़, कुछ उमेठा–उमेठी नहीं कर पाते, फिर ऐसी सत्ता के मालिक बने रहने का भला क्या प्रयोजन ?

तो बच्चे की इस अस्मिताविहीन अवस्था में खिलौने ही है जो उसकी इस कमी को पूरा करते हैं । उसके निजी संसार का अंग बन कर आते हैं । उसके स्वतंत्र साम्राज्य का ऐसा हिस्सा जहां उसकी निर्बाध सत्ता कायम रहती है। इस संसार में वह हवाई-जहाज उड़ा सकता है, कार दौड़ा सकता है, किसी के भी सीने पर पिस्तौल तान सकता है। शेर की मूंछें मरोड़ सकता है, हाथी की पूंछ खींच सकता है । मेंढ़क की पीठ पर भालू बैठा सकता है । यहां तक कि बच्चों को पाल पोस कर उन्हें डांट-डपट, खिला पिला सुला कर अपने बड़े होने की होंस पूरी कर सकता है । कितना विचित्र है कि एक बच्चा गुड्डे-गुडियों को पाते ही तत्काल बड़ों की भूमिका निभाने लगता है । वह गुड्डे को डांटता है, शीशी लगाकर दूध पिलाता है, गोद में लिटाकर थपकियां देता है । डाक्टर बनकर इन्जेक्शन लगाता है ।

कभी लाड़ तो कभी डांट, ऐसा व्यवहार करता है मानो वह उसका पालनहार ही नहीं बल्कि सिरजनहार भी है । और इस सबमें उसको बड़ा सुख मिलता है । इतना ही नहीं इनकी एकरूपता से ऊब कर वह इनकी उमेंठा-उमेंठी कर कुछ बदलाव लाना चाहता है तो वे अक्सर टूट जाते हैं। इसी सोचा विचारी में गाने की एक पंक्ति कौंध उठती है,'खिलौना जानकर तुम तो मेरा दिल तोड़ जाते हो।''

गीतकार आखिर कहना क्या चाहता है । दिल को खिलौना समझ लिया इसलिए तोड़ बैठे ? याने किसी चीज को चट से तोड़ डालने में जो सहज प्रतीक उभरता है तो वह खिलौने का । मानो खिलौने का तोड़ा जाना बड़ी सर्व स्वीकार्य और स्वाभाविक बात हो । जैसे कोई कहे, अरे ! तुम तो मिठाई समझ कर इसे गप कर गये । अर्थात् मिठाई की अंतिम परिणिति उसे खा लेने में निहित है। तो क्या इसी तरह खिलौने की उसके तोड़े जाने में ?

और मैं सोचता हूं जो बात खिलौने के संबंध में मैं सुबह बच्चों से कह रहा था, वह अधूरी बात थी। पूरी बात शायद इस तरह होगी, कि बच्चे जिससे खेलने में आनंद मनाएं और जिसे तोड़ने की उन्हें पूरी तरह सहूलियत हो, वह वस्तु खिलौना है । या कह सकते हैं कि बच्चों को जिसके साथ खेलने और ऊब जाने पर तोड़ने में मजा आए वह खिलौना है । मालूम नहीं मैं ठीक ठीक सोच रहा हूं या नहीं, मगर इस वक्त मेरी दृष्टि पलंग के नीचे महीनों

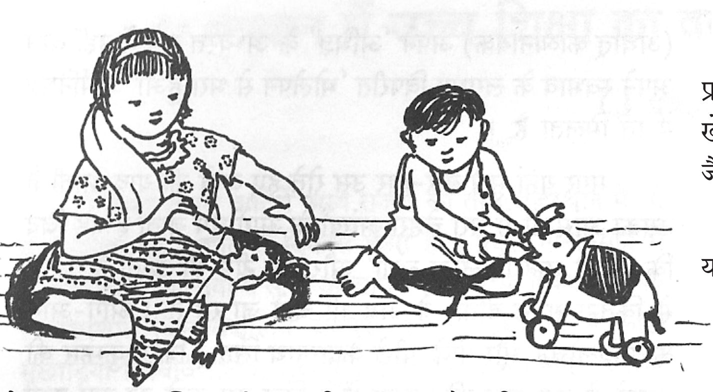

से पड़ी एक प्लास्टिक की आकृति पर जाती है । किसी समय यह एक आकर्षक गुड़िया हुआ करती थी। अस्सी रुपये में खरीदी यह गुड़िया आज कंकाल की तरह पड़ी हुई है । इसकी खूबसूरत, झपकने वाली नीली आंखें, सुनहले रेशमी बाल, परियों जैसे झल्लरदार कपड़े सभी नुचे खुचे पड़े हैं । मानो इसे अब और अधिक नोंचा या तोड़ा जाना संभव नहीं । शायद इसीलिए अब यह बच्चों के लिए 'यूजलैस' हो गई । और मेरी स्मृति में वे सारे खिलौने भी घूम जाते हैं जो ऐसे मजबूत थे कि उन्हें बच्चों द्वारा तोड़ा जाना कतई संभव नहीं था। मुझे लगता है इसी कारण बच्चों ने दो चार दिन में ही उनसे छुट्टी पा ली और उबाऊ समझकर फेंक दिया । अब वे इधर उधर धूल ओढ़े पड़े हैं । दरअसल जिस खिलौने में जब तक कुछ न कुछ तोड़े मरोड़े जाने की गुंजाइश बची रहती है, तभी तक वह बच्चों का मन बहला सकता है । यह बच्चों की मनोरचना से जुड़ी हुई बात ही है । खिलौने का बच्चे की पर्याप्त जद्दोजहद के बाद भी अपरिवर्तित रहना, जस का तस बने रहना उसकी सत्ता को चुनौती देता है । वह बच्चों के साम्राज्य के लिए 'अनफिट' प्रतीत होता है । क्योंकि कोई भी ऐसी सत्ता जिसके कि हम स्वामी हैं और उसमें मनचाहा परिवर्तन भी नहीं कर सकते, कुछ तोड़-मरोड़, कुछ उमेठा-उमेठी नहीं कर पाते, फिर ऐसी सत्ता के मालिक बने रहने का भला क्या प्रयोजन ?

मुझे लगता है, बच्चों में गीले आटे के लोए से खेलने की प्रवृत्ति इसीलिए बिना किसी भेद के सर्वत्र पायी जाती है कि उससे खेलने में उसके स्वामित्व की स्थिति सदैव बनी रहती है । वहां जब जैसा चाहें वैसा बनाने बिगाड़ने का अधिकार सुरक्षित रहता है ।

यहां प्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह की एक कविता बरबस याद आती है -

''सवेरे-सवेरे
एक बच्चा रो रहा था
उसके हाथ से गिरकर
अचानक टूट गया था
उसका मिट्टी का बाघ
एक छोटा सुन्दर बाघ
जो तारों से लड़ चुका था,
जो लड़ चुका था चांद और सूरज
और समुद्री डाकुओं से
ठीक उसकी आंखों के आगे
उसके हाथ से गिरा
और खन्न से टूट गया
और अब वह रो रहा था

अब क्या किया जाये
मैं सोच ही रहा था
कि मुझे सड़क पर दिख गये
कवि त्रिलोचन
मैंने कहा - 'शास्त्री जी,
बच्चा रो रहा है
कुछ तो करना होगा'
बोले - 'चलो ले आते हैं दूसरा बाघ'
मैंने कहा - 'नहीं, वह जिद पर अड़ा है
उसे चाहिये वही
और सिर्फ वही बाघ
जो कि टूटने से पहले वह था'
वे हिले/फिर उनकी आंखों में आ गयी
एक अद्भुत चमक
बोले - 'चलो, वही लाते हैं,
मैनें पूछा - वही । वही कहां मिलेगा ?
'मिलेगा' - उन्होंने कहा -
'कहीं न कहीं / किसी कुम्हार की आखों में

होगा जरूर/जस का तस'
मैंने शक नहीं किया
हो लिया उनके साथ
तब से कितना समय बीता
हम अब भी चल रहे हैं
आगे आगे कवि त्रिलोचन
पीछे-पीछे मैं
एक ऐसे बाघ की तलाश में
जो एक सुबह धरती पर गिरकर
टूट जाने से पहले/ वह था ।

अत्यन्त सहज और सटीक संवादों का अनूठा विन्यास इस कविता को एक मार्मिक आत्मीयता से भर देता हैं । यहां केदारनाथ सिंह जी की निष्ठा प्रणम्य है और वह इसलिए भी कि बच्चे के लिए बाघ की तलाश का कार्य किसी अहम्मन्यता का प्रदर्शन करते हुए, महानायक की मुद्रा में नहीं किया जा रहा। यद्यपि वह किया जा सकता था । मौका भी था और मौसम भी किंतु अपने वरिष्ठ सहयात्री के प्रति आदर प्रकट करते हुए, उन्हें इस खोज में शामिल करना और अगुआ बनाना व स्वयं उनका अनुसरण करना मानवीय संबंधों की गरिमा को रागदीप्त कर देता है ।

अर्थ सघनता से काव्य में जो गौरव उत्पन्न होता है उसे सुधीजन 'अर्थगौरव' कहते हैं । केदारनाथ जी इसी कोटि के कवि माने भी जाते हैं । किन्तु कविता, किसी प्रसंग विशेष से जुड़ जाने के कारण उत्पन्न हुई गंभीरता की वजह से भी गौरवास्पद हो सकती है । ऐसा यह कविता अभिव्यक्त करती है । काव्य पारखी इसे शायद 'अर्थगौरव' के स्थान पर 'प्रसंगगौरव' कहना पसंद करें ।

यहां कवि (अर्थात् काव्यनायक) अपने 'अभिज्ञ' के अभ्यस्त रूप में नहीं वरन् अपने स्वभाव के लगभग विपरीत 'भोलेपन से भरा हुआ' कर्मनिष्ठा में रत मिलता है ।

मगर यहां मुझे बार-बार उस रोते हुए बच्चे की याद आती है उसका आंसुओं से भरा चेहरा आंखों के आगे घूम जाता है वह जिद कि 'मैं तो वही खिलौना लूंगा' और एक टीस सी उठती है। तब से कितना समय बीता, ये अब भी चले जा रहे हैं । आगे-आगे कवि त्रिलोचन और पीछे-पीछे केदारनाथ सिंह । किसी कुम्हार की आंखों में बसे बाघ की तलाश में । किंतु उस बच्चे का क्या हुआ होगा ? क्या वह अभी तक बिसूरती आंखों से किसी की बाट जोह रहा होगा ? अथवा भूल गया होगा वह सब?

मुझे भय है किसी दिन एक नौजवान राह चलते एक वरिष्ठ हिन्दी कवि का अचानक रास्ता रोक, यह न कह उठे कि, ''अंकल। पहचाना मुझे । ... मैं वही बच्चा हूं जिसे बरसों पहले आप बाघ लाने का वादा कर खिसक लिए थे । ... और पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा ।''

''और अब क्या करोगे किसी कुम्हार को तलाश कर ? मुझे कोई जरूरत भी नहीं किसी बाघ-बाघ की । देख नहीं रहे ... मैं खुद एक जीता जागता बाघ जो बन गया हूं । बल्कि उससे भी बेहतर ।''

''और फिर अगर वह कहीं ढूंढ भी लिया तो क्या गारंटी है कि वह फिर किसी बच्चे के हाथों छिटक कर टूट नहीं जायेगा। बोलो। है कोई गारंटी ? दे सकते हो तुम या ये तुम्हारे पास खड़े दादाजी ।'' मुझे नहीं मालूम तब हिन्दी का एक वरिष्ठ कवि क्या उत्तर देगा। ◆